शांति और कारपोरेट मुक्ति का नया धर्मशास्त्र

अरुंधति रॉय

इस साल सिडनी शांति पुरस्कार की घोषणा के साथ-साथ मुझ पर उन लोगों की ओर से जो मुझे जानते हैं, कई कसैले ताने मारे गए। मुझ जैसी उद्दंड को यह पुरस्कार क्यों दिया? क्या उन्हें किसी ने नहीं बताया कि तुम्हारी धमनियों में शांति नाम की कोई चीज है ही नहीं? खैर और सब तो ठीक है अरुंधति दीदी पर ये सिडनी शांति पुरस्कार है क्या बला? क्या सिडनी में कोई युद्ध चल रहा था जिसे रोकने में आपने मदद की?

जहां तक मेरा सवाल है सिडनी शांति पुरस्कार पाना मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। पर मैं इसे एक साहित्यिक पुरस्कार के रूप में ही स्वीकार कर रही हूं, जो किसी भी लेखिका के लिए गर्व की बात है। क्योंकि उन कई खूबियों के विपरीत जिनसे मुझको जोड़ा जाता है, न मैं कोई सामाजिक कार्यकर्त्ता हूं न ही किसी जन आंदोलन की नेता। और "बेजुबानों की जुबान" तो मैं कतई नहीं हूं। (हम सब जानते हैं कि "बेजुबान" जैसी कोई चीज़ होती ही नहीं है। या तो जान बूझ कर चुप किए गए होते हैं या फिर सप्रयत्न अनसुने रहते हैं।) मैं लेखक हूं और अपने अलावा किसी अन्य का प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं कर सकती। इसलिए अगर

मैं चाहूं तो भी मेरे लिए यह कहना बड़बोलापन होगा कि मैं यह पुरस्कार उन लोगों के लिए स्वीकार कर रही हूं जो कमज़ोरों की और ताक़तवरों के बरक्स जिनके अधिकार छीन लिए गए हैं उनकी लड़ाई लड़ रहे हैं। इस पर भी मैं यह जरूर कहना चाहूंगी कि यह पुरस्कार सिडनी पीस फाउंडेशन की उस राजनीति, उस विश्व-दृष्टिकोण के प्रति एकजुटता की अभिव्यक्ति है जिस पर दुनिया भर के हम जैसे करोड़ों लोगों की आस्था है।

यह विडंबना ही है कि जो व्यक्ति अपना अधिकांश समय प्रतिरोध के दांव-पेंचों के बारे में सोचने में लगाता हो और सर्वमान्य शांति की सारी प्रक्रिया को तोड़ने की साज़िश करता हो, उसे शांति पुरस्कार दिया जाए। आपको याद रखना चाहिए कि मैं मूलतः एक सामंतवादी देश की वासी हूं और सामंती शांति से ज्यादा बेचैन करनेवाली और कोई चीज शायद ही होती हो। कभी-कभार पुरानी कहावतों में भी सच्चाई होती है। बगैर न्याय के वास्तविक शांति हो ही नहीं सकती और बिना प्रतिरोध के न्याय मुमकिन नहीं है।

आज सिर्फ़ न्याय ही नहीं बल्कि स्वयं न्याय का विचार (अवधारणा) ही खतरे में है। समाज के निर्बल तबकों पर आज हमला व्यापक, निर्मम और चतुराई से भरा होने के बावजूद इतना संकेंद्रित बर्बर और सतत है कि इसके हेड्डीपन ने न्याय की हमारी परिभाषा का ही क्षरण कर दिया है। इसने हमारी दृष्टि को सीमित और अपेक्षाओं को कम कर दिया है। यहां तक कि अच्छे-अच्छे नेकनीयत लोगों के लिए भी न्याय के मंहगे और भव्य विचार का स्थान धीरे-धीरे "मानवाधिकार" का कई गुना कमजोर विमर्श ले रहा है।

अगर आप महसूस करें तो यह एक ख़तरनाक बदलाव है। अंतर इतना है कि समता और समानता के विचार क्षीण होकर सत्ता के समीकरण से बाहर हो गए हैं। यह सतत दमन की प्रक्रिया है। लगभग गैरइरादतन हम न्याय को अमीरों के लिए मानने लगे हैं और गरीबों के लिए मानवाधिकार की बात सोचते हैं। कार्पोरेट जगत के लिए न्याय और इसकी प्रताड़ना झेलने वालों के लिए मानवाधिकार। अमेरिकियों के लिए न्याय, अफ़ग़ानियों और इराकियों के लिए मानवाधिकार। सवर्णों के लिए न्याय, दलितों और आदिवासियों (अगर ऐसी कोई चीज होती है तो) के लिए मानवाधिकार। गोरे आस्ट्रेलियाई के लिए न्याय और आदिवासियों व अप्रवासियों के लिए मानवाधिकार (अधिकांशतः तो वह भी नहीं)।

यह साफ़ होता जा रहा है कि मानवाधिकार का हनन सारी दुनिया पर एक निरंकुश और अन्यायपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक संरचना लादने की प्रक्रिया का एक आवश्यक और अंतर्निहित हिस्सा बन गया है। व्यापक स्तर पर मानवाधिकार का हनन किए बिना नव-उदारवादी परियोजना नीतियों की काल्पनिक दुनिया से बाहर नहीं निकल पाती। लेकिन "मानवाधिकार हनन" को, एक अन्यथा स्वीकार्य राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था की, दुर्भाग्यपूर्ण, लगभग दुर्घटनात्मक स्थिति के रूप में दर्शाया जा रहा है। मानो कि कोई छोटी-मोटी दिक्क़त हो जिसे ग़ैर-सरकारी संस्थाएं थोड़ा-सा ध्यान देकर सुलझा सकती हैं। इसलिए कश्मीर और इराक जैसे टकराव के क्षेत्रों में, मानवाधिकार के पेशेवर कार्यकर्ताओं को संदेह की नजर से देखा जाता है। ग़रीब देशों में प्रतिरोध के कई आंदोलन जो विकट अन्याय के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं और "मुक्ति" और "विकास" की अवधारणाओं के आधारभूत सिद्धांतों पर उंगली उठा रहे हैं, मानवाधिकार से जुड़ी ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को आधुनिक मिशनरियों के रूप में देखते हैं जो कि साम्राज्यवाद के घृणास्पद चेहरे पर मुखौटे का काम रही हैं। ये राजनैतिक आक्रोश को ठंडा करने और यथास्थिति को बनाए रखने का काम कर रहे हैं।

अभी कुछ ही हफ्ते पहले आस्ट्रेलिया की बहुसंख्यक जनता ने जॉन हावर्ड को दुबारा प्रधानमंत्री बनाया है। अन्य बातों के अलावा इन्हीं सज्जन के नेतृत्व में आस्ट्रेलिया इराक पर अनैतिक हमला और नाजायज कब्जे करने में शामिल हुआ है। इराक पर हमले को इतिहास में सबसे बुजदिल लड़ाइयों में से एक के रूप में दर्ज किया जाएगा। यह एक ऐसी लड़ाई

थी जिसमें दुनिया को अनेकों बार नष्ट कर देने वाले परमाणु हथियारों से लैस अमीर देशों के एक गिरोह ने इस झूठे इल्जाम के साथ दुनिया के सबसे गरीब देश को घेर लिया कि उसके पास परमाणु हथियार हैं। पहले उसे संयुक्त राष्ट्र के जरिए निरस्त्र करवाया, फिर उस पर हमला किया, कब्जा किया और अब उसे बेचने का काम चल रहा है।

मैं इराक का जिक्र इसलिए नहीं कर रही हूं (अन्य भयावह घटनाओं की कीमत पर जो कि उद्घाटित होने के लिए अंधेरे में फड़फड़ा रहे हैं) क्योंकि सब लोग इस पर बात कर रहे हैं बल्कि इसलिए जिक्र कर रही हूं क्योंकि यह आने वाले संकटों की निशानी है। इराक नए चक्रों की शुरुआत है। यह हमें कारपोरेट-मिलटिरी गठबंधन के, जो कि 'साम्राज्य' कहलाता है, तौर-तरीकों को समझने का मौका देता है। नये इराक में सारे नकाब उतर गए हैं।

जैसे-जैसे दुनिया के संसाधनों पर कब्जा जमाने का बाजार गर्म हो रहा है वैसे-वैसे आर्थिक उपनिवेशवाद पूरी तरह से फौजी आक्रमकता का रूप ले रहा है। इराक इसी कारपोरेट भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का चरम है जिसमें नव-उपनिवेशवाद और नव-उदारवाद दोनों अंतर्निहित हैं। अपने यहां हम इसे रक्तरंजित पर्दे के पीछे देख सकते हैं जहां निर्मम सौदेबाजी हो रही है। लेकिन पहले संक्षेप में सामने पर्दे पर एक नजर डालते हैं।

1991 में अमेरिकी राष्ट्रपति बड़े जॉर्ज बुश ने आपरेशन डेजर्ट स्टॉर्म शुरू किया था। हजारों इराकी युद्ध में मारे गए थे। इराक की जमीन पर 300 टन के परमाणु सक्रिय (डीपलीटेड यूरेनियम) बम डाले गए थे जिसके परिणाम स्वरूप वहां बच्चों में चार गुना अधिक कैंसर बढ़ गया। फलस्वरूप बच्चों में कैंसर का कहर चार गुणा तेजी से बढ़ा। तेरह साल तक इराक की ढाई करोड़ जनता युद्धक्षेत्र में रही जहां उसे भोजन, दवा-दारू और साफ पेयजल से महरूम रखा गया। यहां याद रखने की जरूरत है कि व्हाइट हाउस में सत्तानशीन चाहे डेमोक्रेट हो या रिपब्लिकन अमेरिकी चुनावी उन्माद में भी पाशविकता का यह स्तर ज्यों का त्यों बना रहा। 'ऑपरेशन शॉक एंड ऑ' तक के आर्थिक नाकेबंदी के दौर ने लगभग पांच लाख इराकी बच्चों के प्राण लिए। जहां हाल तक के मरे एक-एक अमेरीकी सैनिक की गिनती है, वहीं किसी को पता नहीं कि कुल कितने इराकी सैनिक मारे गए। अमेरीकी जनरल टॉमी फ्रैंक का कहना है, "हम लाशें नहीं गिना करते" (मतलब इराकियों की लाशें)। वह यह भी कह सकते थे कि " जेनेवा कनवेंशन से हमारा कोई लेना-देना नहीं है।"

लेसेंट मेडिकल जर्नल नाम की पत्रिका द्वारा किए गए एक गहन सर्वेक्षण के अनुसार 2003 के अतिक्रमण के बाद से लगभग एक लाख इराकियों ने अपनी जानें गंवाई हैं। यानी इस तरह के सौ हालों के बारबर के लोगों ने। यानी कि सौ हालों से भरे अपने मित्र, माता-पिता, बच्चे, साथी, प्रेमी...आप सब जैसे। अंतर केवल यह है कि यहां आज ज्यादा बच्चे नहीं हैं...हमें इराक के बच्चों को नहीं भूलना चाहिए। तकनीकी रूप से यह खून की होली लक्ष्यभेद बंबारी (प्रिसीज़न बांबिंग) कहलाती है। सामान्य भाषा में इसे कत्लेआम कहते हैं।

ये सारी बातें अब जग जाहिर हैं। वे लोग जो इस हमले के समर्थक हैं और ऐसे हमलावरों को वोट देते हैं अनजान होने का बहाना नहीं बना सकते हैं। निश्चय ही वे इस बात पर विश्वास करते हैं की यह भयावह क्रूरता सही है और औचित्यपूर्ण है या कम से कम इसलिए स्वीकार्य है क्योंकि उन के हित में है।

इस तरह 'सभ्य' और 'आधुनिक' दुनिया जिसे कि जनसंहारों, गुलामी और औपनिवेशवाद पर बहुत ही सावधानी से निर्मित किया गया है---दुनिया के तेल पर इसका आधिपत्य है। और दुनिया के अधिसंख्य हथियारों पर, पैसों पर और मीडिया पर भी। इम्बेडेड कारपोरेट मीडिया जिसमें कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धांत की जगह स्वतंत्र, अगर सहमत हैं, के सिद्धांत ने ले लिया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य हथियार निरीक्षक हैंस ब्लीक्स ने कह दिया था कि मुझे इराक में परमाणु हथियार के कोई

सबूत नहीं मिले हैं। अमेरिकी और ब्रिटिश सरकारों द्वारा पेश किए गए सारे सबूत झूठे साबित हुए हैं। चाहे वह सद्दाम हुसैन द्वारा निगर से यूरेनियम की खरीद की रिपोर्ट हो या फिर ब्रिटिश खुफिया विभाग की वह रिपोर्ट जो किसी छात्र के पुराने शोध-प्रबंध से उड़ाई हुई थी। इतना कुछ साबित हो जाने के बाद भी युद्ध के पूर्व पीठिका में अमेरिका के 'प्रतिष्ठित' प्रमुख समाचारपत्रों और टेलीविजन चैनलों पर हर रोज की मुख्य खबरें होती थीं—इराक के शास्त्रागार में परमाणु हथियारों के 'सबूत'। अब यह बात जगजाहिर हो चुकी है कि परमाणु हथियारों के जुड़े हुए इस गढ़े हुए 'सबूत' के पीछे अहमद चलाबी का हाथ था, जिसकी मुट्ठी को सुप्रसिद्ध सीआईए लाखों-करोड़ों डॉलरों से (ठीक उसी तरह जिस तरह कि इंडोनेशिया के जनरल सुहार्तो, चिली के जनरल पिनोशे, ईरान के शाह, तालिबान और खुद सद्दाम हुसैन) की करता रहा था।

और इस तरह एक देश को बंबारी से मिटा दिया गया। यह सच है कि कहीं-कहीं दबे स्वर में माफी की फुसफुसाहट भी सुनाई पड़ी। *अरे भाई माफ करो पर कुछ भी हो हमें आगे बढ़ते रहना है। फिर से खबरें उड़ रही हैं कि आइरान और सीरिया के पास भी परमाणु हथियार हैं।* अंदाजा लगाईये कौन उड़ा रहा है ये खबरें? वही रिपोर्टर जो इराक के खिलाफ झूठे स्कूप छपवा रहे थे। गंभीर रूप से इम्बेडेड पत्रकारों की ए टीम।

ब्लेयर प्रशासन द्वारा जनसंहारक हथियारों की खुफिया रिपोर्ट के साथ 'छेड़छाड़' की खबर के बाद बीबीसी के मुखिया को इस्तीफा देना पड़ा था और एक व्यक्ति को तो आत्महत्या करनी पड़ी। लेकिन इंग्लैंड के प्रधानमंत्री की कुर्सी सलामत है जबकि उनकी सरकार ने खुफिया सूचनाओं में 'छेड़छाड़' कर उन्हें बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने से भी ज्यादा कुत्सित काम किया है। यह एक देश पर अनैतिक हमले और उसकी जनता के कत्लेआम के लिए जिम्मेदार है।

मेरे जैसे लोग जो आस्ट्रेलिया घूमने के लिए आते हैं, उन्हें वीजा फार्म भरते समय इस सवाल का जवाब देना पड़ता है कि 'क्या आप कभी युद्ध अपराध या मानवता विरोधी अपराध या मानवाधिकार के खिलाफ किसी तरह के अपराध में लिप्त रहे हैं? क्या जार्ज बुश और टोनी ब्लेयर आस्ट्रेलिया का वीजा पाने के हकदार हैं? अंतर्राष्ट्रीय कानून के मुताबिक तो वे सिर्फ और सिर्फ युद्ध अपराधी हैं।

यह मान लेना भी एक तरह का बचकानापन होगा कि अगर इन्हें पदों से हटा दिया जाए तो दुनिया बदल जाएगी। त्रासदी यह है कि इनके विरोधी भी इनकी नीतियों से कोई नाइत्तफाक नहीं रखते हैं। अमेरिकी चुनाव का असली मुद्दा यह था कि कौन बेहतर कमांडर इन चीफ और अमरीकी साम्राज्य का बेहतर मैनेजर बन सकता है। लोकतंत्र में अब मतदाताओं के पास वास्तविक विकल्प नहीं बचा है बस बेहतर चुनाव की गुंजाइश बची है।

हालांकि इराक में कोई जनसंहारक हथियार नहीं मिला है पर इधर स्तब्ध कर देनेवाला एक सबूत मिला है कि सद्दाम हुसैन हथियार इकट्ठा करने के नए कार्यक्रम की योजना बना रहा था। (उसी तरह जैसे कि मैं ओलंपिक की सिनक्रोनाइज्ड तैराकी का स्वर्ण पदक जीतने की योजना बना रही हूं।) आत्मरक्षा में पहले ही आक्रमण के सिद्धांत की जय हो। कौन जानता है कि वह और न जाने किस-किस तरह की भयावह बातें सोच रहा था—अमेरीकी सिनेटरों को डाक में टैम्पैक्स भेजने या लंदन के मैट्रो में मादा खरगोशों को बुर्का पहना कर भेजने जैसी। निश्चय ही नए इराक में सद्दाम हुसैन के स्वतंत्र और निष्पक्ष मुकदमे में सब कुछ सामने आ जाएगा।

सिवाय उस अध्याय के कि किस तरह अमेरिका और ब्रिटेन ने सद्दाम हुसैन के लिए उस समय कुबेर का खजाना खोल दिया था जब वह इराक में कुर्दों और शियाओं पर घातक हमले करवा रहा था। सब कुछ बताया जाएगा सिवा सद्दाम सरकार द्वारा संयुक्त राष्ट्र को सौंपी 12,000 पृष्ठों वाली रिपोर्ट के जिसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इस लिए सेंसर कर दिया गया था कि उसमें उन 24 अमेरिकी कंपनी के नाम दर्ज थे जो कि खाड़ी युद्ध से पहले इराक के परमाणु और परंपरागत

आयुध कार्यक्रम में हिस्सेदारी कर रहे थे (इसमें शामिल थे--बेकटेल, ड्यूपोंट, ईस्टमैन कोडक, हल्वेट पैकार्ड, इंटरनेशनल कंप्यूटर सिस्टम और यूनिसिस)।

तो इस तरह इराक 'आजाद' हो गया है। इराकी जनता को गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया गया है और बाजारों को 'मुक्त' कर दिया गया है। यही तो नव उदारवाद का तराना है। बाजार को मुक्त कर दो। जनता को बंदी।

अमेरिकी सरकार ने इराकी अर्थव्यवस्था के तमाम सेक्टरों का निजीकरण कर इसे बेच दिया है। आर्थिक नीतियों और कर-कानूनों में व्यापक स्तर पर फेरबदल किया गया है। अब विदेशी कंपनियां इराकी कंपनियों को पूरी तरह खरीद सकती हैं और मुनाफे को अपने यहां ले जा सकती हैं। यह उन अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का सरासर उल्लंघन है जो कि आक्रांताओं पर लागू होते हैं। जिस चोरी-छुपे तरीके से और हड़बड़ी में 'अंतरिम इराकी गठबंधन' को 'सत्ता' सौंपी गई उसका यह एक बड़ा कारण था। एक बार जब इराक को बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सौंपने का काम पूरा हो जाएगा तो फिर उन्हें वास्तविक लोकतंत्र की एक हल्की खुराक दे भी दें तो कुछ नहीं बिगड़ेगा। असल में यही चीज तो है जो कारपोरेट जगत के नए मुक्ति सिद्धांत के, जो कि वैसे नव लोकतंत्र के नाम से जाना जाता है, जनसंपर्क का काम करेगी।

इसलिए इराक की नीलामी के दौरान जो हंगामा हुआ उस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। बेकटेल और हैली बर्टन जैसी कंपनियों को, जिसके अमेरिका के उपराष्ट्रपति डिक चेनी पूर्व अध्यक्ष थे, 'पुनर्निर्माण' के बड़े-बड़े ठेके मिले। अगर इन कंपनियों का बायोडाटा किसी आम आदमी को थमा दिया जाए तो उसे भी पता चल जाएगा कि ये इराक में ही नहीं बल्कि सारी दुनिया में कैसे काम करती हैं। बेकटेल को ही लेते हैं यह भी इसलिए कि क्योंकि बेचारे हैली बर्टन के खिलाफ इस बात की जांच चल रही है कि उन्होंने इराक को भेजे जानेवाले तेल की ज्यादा कीमत वसूली और इसे 2.5 बिलियन डॉलर का ठेका मिला हुआ है।

बेकटेल ग्रुप और सद्दाम हुसैन की व्यापारिक यारी पुरानी है। उन दोनों के बीच हुए कई सौदों में बिचौलिए की भूमिका किसी और नहीं, बल्कि खुद डोनाल्ड रम्सफीड ने ही निभाई थी। 1998 में, जब सद्दाम हुसैन ने हजारों कुर्दों को जहरीली गैस देकर मारा था, उसके तुरंत बाद बेकटेल ने समझौता किया था वह बगदाद में दोहरे इस्तेमाल के रासायनिक कारखाना लगाएगा।

ऐतिहासिक रूप से, बेकटेल कंपनी की रिपब्लिकन पार्टी के साथ अत्यंत गहरे संबंध रहे हैं, जो आज भी जारी हैं। आप बेकटेल और रीगन-बुश प्रशासन को एक टीम कह सकते हैं। पूर्व रक्षा सेक्रेटरी कास्पर वीनबर्गर बेकटेल के भी वरिष्ठ वकील थे। ऊर्जा मंत्रालय के पूर्व डिप्टी सेक्रेटरी डब्ल्यू. केनेथ डेविस बेकटेल के उपाध्यक्ष थे। कंपनी के अध्यक्ष रीले बेकटेल, राष्ट्रपति की निर्यात परिषद् के सदस्य हैं। जैक शीहान, जो पूर्व नौसेना के पूर्व जनरल हैं, बेकटेल के वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं और संयुक्त राज्य अमेरिका की रक्षा नीति बोर्ड के सदस्य भी हैं। पूर्व गृह मंत्री जार्ज शुल्ट्ज जो बेकटेल ग्रुप के बोर्ड ऑफ डारेक्टर्स के एक सदस्य हैं, कुछ समय पहले तक इराक की मुक्ति परिषद की सलाहकार समिति के अध्यक्ष थे।

जब उनसे *न्यूयार्क टाइम्स* ने पूछा कि उनकी दो 'नौकरियों' से जो हितों का टकराव होगा, उसे लेकर क्या वह फिक्रमंद हैं, तो उनका जवाब था, "मैं नहीं जानता कि बेकटेल को इससे (इराक पर हमले से) वास्तव में फायदा भी होगा। लेकिन अगर कोई काम हो तो बेकटेल उसे बखूबी कर सकती है।" बेकटेल को इराक के पुनर्निर्माण के लिए एक बिलियन डॉलर के ठेके मिले जिसमें विद्युत उत्पादन केंद्र, जल आपूर्ति, सीवेज सिस्टम और एयरपोर्ट की सुविधाओं के अनुबंध शामिल हैं। जिस तरह से ये सब एक दूसरे से जुड़े हैं अगर यह खून से लथपथ संदर्भ न होता तो दगाबाजी और छिनालपनेवाला बैडरूम नाटक बन जाता।

2001 और 2002 के बीच अमेरिकी रक्षा नीति समूह के कुल 30 सदस्यों में से नौ किसी न किसी उस कंपनी से जुड़े

थे, जिन्हें 76 बिलियन डॉलर के ठेके मिले थे। एक वह जमाना था जब हथियारों का निर्माण युद्ध लड़ने के लिए होता था। आज हथियार बेचने के लिए जंग का निर्माण किया जाता है।

1990-2002 के बीच बेकटेल कंपनी ने रिपब्लिकन और डेमोक्रेट, दोनों ही पार्टियों को चुनाव प्रचार के लिए कुल 33 लाख डॉलर चंदे में दिये। 1990 से अब तक वह 2000 सरकारी ठेके हथिया चुका है जो 11 बिलियन डॉलर से ज्यादा के बनते हैं। यह किसी भी निवेश पर होने वाली अविश्वसनीय आमदनी है। है या नहीं, आप क्या कहते हैं?

और बेकटेल के पदचिन्ह पूरी दुनिया में मौजूद हैं। बहुराष्ट्रीय होने का यही तो मतलब होता है न।

बेकटेल ग्रुप ने पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर तब खींचा था जब सने बोलीविया के पूर्व तानाशाह ह्योगो बेंजर के साथ कोचाबाम्बा शहर की जल आपूर्ति के निजीकरण का समझौता किया था। बेकटेल ने सबसे पहले पानी का दाम बढ़ाया। हजारों लोग जो बेकटेल के महंगे पानी का बिल जमा नहीं कर सकते थे, सड़कों पर उतर आए। एक जबर्दस्त हड़ताल ने शहर के जनजीवन को ठप्प कर दिया। मार्शल लॉ लागू किया गया। हालांकि अंततः बेकटेल को अपना दफ्तर छोड़ कर भागना पड़ा पर वह बोलीवियाई सरकार से संभावित लाभ की हुई हानि के हरजाने के लिए करोड़ों डालर पाने के लिए बातचीत कर रहा है। जैसा कि हम सब देख रहे हैं यह कारपोरेट जगत का एक प्रिय खेल बन गया है।

भारत में बेकटेल ग्रुप जनरल इलेक्ट्रिक के साथ मिलकर, फिलहाल बंद पड़े कुख्यात एनरॉन पावर प्रोजेक्ट की मालिक बनने वाली है। एनरॉन का ठेका, जिसके तहत महाराष्ट्र सरकार 30 अरब डॉलर भुगतान करने को बाध्य है, भारत में अब तक का सबसे बड़ा ठेका है। एनरॉन कंपनी यह बताने में जरा भी नहीं शरमाई कि उसने भारतीय राजनेताओं और नौकरशाहों को 'शिक्षित' करने में लाखों डॉलर खर्च किए थे। महाराष्ट्र में एनरॉन का ठेका, जो निजी ऊर्जा क्षेत्र की सबसे 'द्रुतगामी' परियोजना थी, देश की सबसे बड़ी धोखाधड़ी साबित हुई है। (एनरॉन रिपब्लिकन पार्टी के चुनाव प्रचार में भारी चंदा देने वालों में से एक थी।) एनरॉन ने जो बिजली पैदा की वह इतनी महंगी थी कि सरकार ने उसे खरीदने से बेहतर यह समझा कि उसे वह निश्चित शुल्क देती रहे जिसका प्रावधान अनुबंध में है। इसका मतलब यह हुआ कि दुनिया के सबसे गरीब देशों में से एक देश की सरकार एनरॉन को हर साल 22 करोड़ डॉलर इसलिए अदा कर रही है कि यह कंपनी बिजली पैदा न करे।

अब एनरान बंद हो गई है, बेकटेल और जनरल इलेक्ट्रेक भारत सरकार पर 5.6 बिलियन डॉलर अदा करने का दावा ठोक रही है। जितनी पूंजी इन्होंने (या एनरॉन ने) इस पर लगाई नहीं होगी, उससे कई गुना ज्यादा की मांग की जा रही है। यहां मैं आपको फिर से याद दिला दूं कि यह उसी संभावित मुनाफे के अनुमान की रकम है जो परियोजना के साकार हो जाने से होती। अगर मैं 5.6 बिलियन डॉलर का हिसाब लगाऊं तो भारत सरकार को हर साल ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना कार्यक्रम चलाने की रकम से यह थोड़ा ज्यादा ही है। इससे तो कम-से-कम उन लाखों लोगों को जीने के लिए दिहाड़ी तो मिलेगी जो बदहाली में, बेघर-बार, कर्ज में डूबे, कुपोषण से ग्रस्त और डब्ल्यू.टी.ओ. के पांव तले जीने को अभिशप्त हैं—उस देश में जहां किसान कर्ज के दानवी चंगुल में फंसकर आत्महत्या कर रहे हैं, सैकड़ों के हिसाब से नहीं बल्कि हजारों के हिसाब से। उधर भारत का कारपोरेट वर्ग ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के प्रस्ताव की बेशर्मी से खिल्ली उड़ा रहा है। सत्ता में आकर पगलाए वामपंथियों का शेखचिल्लीपन बताकर मज़ाक उड़ा रहे हैं। वे इसे वामपंथियों की नई-नई और बेढंगी अव्यावहारिक मांग बता रहा है। 'इतना पैसा आएगा कहां से?' यह इस वर्ग का व्यंग्य है सवाल नहीं। दूसरों के गिरेबान में झांकने वाले इन अतिवादियों से अगर यह पूछा जाए कि एनरॉन जैसी घटिया व भ्रष्ट कंपनी के साथ इतना घटिया समझौता करके ये पीछे क्यों हट गए और अब क्यों उसे

निरुत्पादक बनाए रखने के लिए इतना पैसा फूंक रहे हैं तो इसे पूंजी की चंचलता और 'निवेश के लिए अनुपयुक्त परिस्थिति' का कुतर्क गढ़कर जमीन-आसमान एक कर देते हैं। हाल ही में ही तो लंदन में तीनों पक्षों, बेकटेल, जनरल इलेक्ट्रिक और भारत सरकार के बीच खटराग चल रहा था। बेकटेल और जी.ई. को कुछ हो जाने की पूरी आस है क्योंकि भारत के वित्त सचिव स्वयं ही एनरॉन मसौदे को स्वीकृति दिलाने में दायां हाथ बने हुए थे, वे अब विश्व मुद्राकोष (आई. एम.एफ.) में अपनी सेवा देने के बाद स्वदेश लौट आए हैं। आज वे योजना आयोग के पद पर सुशोभित हैं।

अगर गौर करें तो किसी एक कारपोरेट का मुनाफा कम-से-कम ढाई करोड़ लोगों को मजबूरी (विभिन्न राज्यों के मानक और औसत के हिसाब से) की दर से सौ दिन का रोजगार दिलाने के लिए काफी हैं गौर यह भी करें कि यह संख्या आस्ट्रेलिया की पूरी आबादी से 50 लाख ज्यादा है। नव उदारवाद का इससे ज्यादा घिनौना और कौन-सा प्रमाण होगा?

बेकटेल के कारनामे यहीं नहीं खत्म होते। सुनकर स्वयं अनैतिकता भी गरमाने लगती है। नओमी क्लीन लिखती हैं कि बेकटेल ने पूरी कामयाबी के साथ जंग की चोट सहलाते इराक के खिलाफ 'हर्जाने' और 'नाहासिल मुनाफे' के लिए दावा ठोंक दिया। एवज़ में उसे सत्तर लाख डॉलर बैठे-बिठाए मिल गए।

मैनेजमेंट पढ़ने वाले सभी छात्रों से मेरी गुजारिश है कि अब वे हावर्ड और वार्टन के चक्कर में न पड़ें। मेरे पास कारपोरेट जगत में धमाल मचाने की कुंजी है। सभी सफलताओं की एक मात्र कुंजी—सबसे पहले अपनी कंपनी के बोर्ड में सरकार के वरिष्ठ नौकरशाहों को शामिल करें। फिर अपने बोर्ड के इन सदस्यों के साथ सरकार को भी शामिल करें। अब इसमें तेल के व्यापार की चटनी मिलाएं और जीभ फिराते हुए जोर से हिलाएं। जब सरकार और आपकी कंपनी आपस में घुल-मिलकर एक जान हो जाए तो एक तेल की प्रचुरता वाले देश में अपनी सरकार के साथ सांठ-गांठ कर एक संगदिल तानाशाह का हाथ मजबूत करें अब ये तानाशाह अपनी ही अवाम का खून पिएं तो अपनी निगाह उधर से फेर लें और अंदर ही अंदर अपने आपको धीरे-धीरे उबलने दें। इस बीच के समय में सरकारी समझौते के तहत कुछ बिलियन डॉलर जमा करने में इस्तेमाल करें। अब फिर से अपनी सरकार के साथ सांठ-गांठ करें। आप देखेंगे कि कैसे आपकी सरकार इन तानाशाहों को अपदस्थ करती है, जनता को बमों से बर्बाद करती है तथा जरूरी व मूलभूत सेवाओं को निशाना बनाकर किस तरह हजारों लोगों को एकतरफा हमले में मार गिराती है। अब एक बार फिर बिलियन डॉलर से या इसके समतुल्य कोई समझौता करें ताकि मूलभूत सेवाओं की 'पुर्नबहाली' हो सके। अपने यात्रा संबंधी और 'नाहासिल मुनाफे' के हर्जाने को लेकर मुकदमा दायर करें। अंत में इसे बांट दें। अब एक टीवी स्टेशन खरीदें ताकि अगली जंग तक आप जंग कवरेज की आड़ में अपने हथियारों और तकनीक का प्रदर्शन कर सकें। सबसे अंत में, अपनी कंपनी के नाम पर एक मानवाधिकार पुरस्कार प्रतिष्ठान की नींव रख लें। आप चाहें तो मरणोपरांत यह पुरस्कार मदर टेरेसा को समर्पित कर सकते हैं। वह इसे ठुकरा भी नहीं पाएंगी और न ही आपसे सवाल-जवाब कर पाएंगी।

इराक पर गैर-कानूनी हमलों और उस पर कब्जा जमाने के बाद उसे बाध्य किया गया है कि वह हैलीबर्टन, शेल, मोबिल, नेस्ले, पेप्सी, केन्डुकी फ्रायड चिकेन और ट्वॉंग यू.आर. जैसी कंपनियों को आई मुनाफे में गिरावट के हर्जाने के रूप में 20 करोड़ डॉलर का मुआवजा दें। इस जोड़-घटाव में इराक द्वारा लिया गया 125 बिलियन डॉलर का कर्ज शामिल नहीं है। बेबसी के इस आलम में इराक को आई.एम.एफ. का मुंह देखना पड़ रहा है। ठेठ यमदूत की तरह आई.एम.एफ. इस बेबसी का संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के साथ आनंद ले रही है। वैसे अलकायदा के भूत को छोड़कर इराक में समायोजित करने लायक कोई संरचना बची ही कहां है।

नए इराक में निजीकरण ने अपनी सभी हदें पार कर डाली

हैं। अपने आधिपत्य को और मजबूत करने के लिए अमेरिकी सेना हर रोज भाड़े के सैनिकों की भर्ती कर रही है। इसका फायदा यह होता है कि जब ये निजी सैनिक मारे जाते हैं तो इनकी गिनती अमेरिकी सैनिकों में नहीं होती। इससे आपकी जनता का गुस्सा नियंत्रित रहता है। चुनाव के दिनों में तो यह बहुत ही जरूरी है। सैनिकों के साथ-साथ, कारागार की यातनाओं तक का निजीकरण हो गया है। हमें आगे की दास्तान भी मालूम है। नए इराक में और भी आकर्षण हैं—सारे समाचार पत्रों को जंजीरों में जकड़ दिया गया है। रिपोर्टरों को उनकी जिंदगी से मरहूम कर दिया गया है। टीवी स्टेशनों को बमों से उड़ा दिया गया है। निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर अमेरिकी सेना ने अनेकों बार गोलियां चलाई हैं। कितने ही लोग काल-कलवित हो गए हैं। इराक में अगर आज प्रतिरोध का रूप बचा है तो वह भी उतना ही क्रूर है जितना कि स्वयं अमेरिकी आधिपत्य। क्या इराक में कोई धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक, नारीवादी, अहिंसक प्रतिरोध की जगह बची है? बिल्कुल नहीं।

शायद इसीलिए इराक से बाहर हम लोगों की यह जवाबदेही बन जाती है कि अमेरिकी कब्जे के विरोध में एक जनवादी, धर्मनिरपेक्ष और अहिंसक प्रतिरोध खड़ा करें। अगर हम ऐसा करने में असफल होते हैं तो यह हमारे लिए भी खतरनाक होगा क्योंकि ख़तरा यह है कि प्रतिरोध के विचार को अगवा करके आतंकवाद के साथ इसका घालमेल कर दिया जाए। जबकि प्रतिरोधी संघर्ष और आतंकवाद एक नहीं है।

इसलिए आज बर्बर पूंजीवादी और सैनिक घेरेबंदी से भरी दुनिया में शांति का क्या अर्थ रह गया है? एक ऐसी दुनिया में इसका क्या अर्थ रह गया है जहां मुनाफा कमाने वाली व्यवस्था की ऐसी घेराबंदी कर दी गई है कि गरीब देश, जो सदियों तक उपनिवेशवाद की लूट के शिकार बने रहे, आज भी उपनिवेशवादी देशों के कर्ज में डूबे हुए हैं और हर साल 382 अरब डॉलर सूद के रूप में चुकाने को मजबूर हैं? ऐसे में शांति का क्या मतलब है जहां दुनिया के 587 खरबपतियों की कुल संपत्ति दुनिया के 135 गरीब देशों के सकल घरेलू उत्पाद के कुल योग से कहीं ज्यादा है? जहां धनी मुल्क प्रतिदिन अरब डॉलर अपने कृषि क्षेत्र को सरकारी सहायता देता है और गरीब की सरकारों को अपने किसानों को सहायता देने से रोकता है? सैनिक कब्जे के अधीन इराक, फिलिस्तीन, कश्मीर, तिब्बत या चेचन्या की जनता के लिए शांति का क्या अर्थ रह जाता है? या आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के लिए या इस्लामी देशों के गैर इस्लामी लोगों के लिए या इराक, सऊदी अरब और अफगानिस्तान की महिलाओं के लिए? या भारत के दलितों और आदिवासियों के लिए? या बांध और विकास के नाम पर उजाड़े जा रहे लोगों के लिए इस सबका क्या अर्थ है? उन लाखों गरीबों के लिए शांति का क्या अर्थ है, जिनके संसाधनों को खुलेआम लूटा जा रहा है, जिनके जीवन-यापन की रोजमर्रा की चीजों—जल, जंगल और जमीन और सबसे बढ़कर अपनी बची-खुची इज्जत के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं? उनके लिए...उनके लिए शांति भी तो किसी युद्ध से कम नहीं है।

'साम्राज्यवाद' (एम्पायर) के इस दौर में हम अच्छी तरह जानते हैं कि जंग से किसे लाभ होता है। आज हमें अपने आपसे यह भी ईमानदारीपूर्वक पूछना चाहिए कि शांति से कौन लाभ उठाता है? युद्ध का व्यापार करना भी अपराध है। लेकिन न्याय की बात किए बगैर शांति की बात करना एक तरह से आत्मसमर्पण की वकालत करने जैसा है। और शोषक संस्थाओं और व्यवस्थाओं का पर्दाफाश किए बगैर न्याय की बात करना अव्वल दर्जे का पाखंड है।

गरीबी के लिए खुद गरीबों को ही दोषी ठहराना बहुत आसान है। यह मान लेना भी इतना ही आसान है कि दुनिया तेजी से आतंकवाद और जंग के दुश्चक्र में फंसती जा रही है। यही परिस्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति बुश को यह कहने का अवसर देती है कि "या तो आप हमारे साथ हैं या आतंकवादियों के साथ।" लेकिन हम यह जानते हैं कि यह एक छद्म विकल्प है। हम यह जानते हैं कि आतंकवाद केवल जंग का निजीकरण है, यानी कि आतंकवादी जंग के निर्द्वन्द्व व्यापारी

हैं। वे यह मानते हैं कि हिंसा का प्रयोग सिर्फ राज्य का ही विशेषाधिकार नहीं है।

हमारी विडंबना आतंकवाद की भयानक निरंकुशता और जंग व सैनिक कब्जे के दौरान किए जाने वाले अंधाधुंध नरसंहार के बीच फर्क करना नैतिक रूप से फरेब है। हम ऐसे दो पाटों के बीच पिस रहे हैं जहां एक का समर्थन और दूसरे की भर्त्सना नहीं कर सकते।

जो आर्थिक रूप से संपन्न मगर नैतिक रूप से बेचैन है उन्हें अपने आपसे यह सवाल पूछना चाहिए कि क्या वे वास्तव में दूसरे गड्ढे के पार जाना चाहते हैं? कितनी दूर तक जाने को तैयार हैं? क्या यह चट्टान सचमुच इतनी सुविधाजनक हो गई है कि क्या यहीं ढके रहें? यदि आप इस गड्ढे से उबरना चाहते हैं तो आपके लिए एक साथ अच्छी और बुरी दोनों तरह की खबरें हैं। अच्छी खबर यह है कि पहले दस्ते ने पहले से ऊपर बढ़ना शुरू कर दिया है। वे लोग आधा रास्ता पार कर चुके हैं। दुनिया भर के हजारों कार्यकर्ताओं ने बड़ी मेहनत करके चट्टानों पर पैर रखने की जगह बना ली है और अब वे रस्सी को मजबूती से बांध रहे हैं जिससे कि बाकी लोगों को चढ़ने में आसानी हो। चढ़ने का सिर्फ एक ही रास्ता नहीं है। इसे तय करने के हजारों रास्ते हैं। दुनिया भर में सैकड़ों लड़ाइयां लड़ी जा रही हैं जिन्हें आपके हुनर, आपके दिमाग और आपके संसाधनों की जरूरत है। न कोई लड़ाई अप्रासंगिक है और न ही कोई जीत छोटी है।

बुरी खबर यह है कि रंग-बिरंगे प्रदर्शन, सप्ताहांत के जुलूस और विश्व सामाजिक मंच (वर्ल्ड सोशल फोरम) के वार्षिक जलसे की सैर ही काफी नहीं है। अपने लक्ष्य पर नजर टिकाए सिविल नाफरमानी की ठोस कार्रवाई से ही ठोस नतीजे सामने आएंगे। हो सकता है तत्काल किसी क्रांति का आह्वान ये न कर पाएं। लेकिन ऐसे ढेर सारे काम हैं जो हम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए आज उन कंपनियों की सूची तैयार कर सकते हैं जिन्होंने इराक पर कब्जे से अकूत मुनाफे कमाए हैं और यहां आस्ट्रेलिया में जिनसे दफ्तर खुले हैं। आप उसके नाम जारी कर सकते हैं, बहिष्कार कर सकते हैं, उनके दफ्तरों पर कब्जा जमा सकते हैं और उन्हें खदेड़कर बाहर भगा सकते हैं। यदि ऐसा बोसीनिया में हो सकता है तो यह भारत में भी हो सकता है। आस्ट्रेलिया में हो सकता है। क्यों नहीं हो सकता?

यह सिर्फ एक छोटा-सा सुझाव है। लेकिन यह भी याद रखिए कि संघर्ष में अगर हिंसा की सहायता लेंगे तो इस संघर्ष का विज़न सौंदर्य और कल्पनाशीलता समाप्त हो जाएगी—यह सोचना गलत है। सबसे खतरनाक बात यह होगी कि इसमें महिलाएं हाशिए पर धकेल दी जाएंगी। और जिस राजनैतिक संघर्ष की केंद्र में महिलाएं न हों, आगे महिलाएं न हों, पीछे महिलाएं न हों, उसके अंदर महिलाएं न हों, वह संघर्ष संघर्ष नहीं होता।

कुल मिलाकर मुद्दा यह है कि इस लड़ाई में अवश्य शामिल हुआ जाए। अमेरिका के विलक्षण इतिहासकार हॉवर्ड ज़िन के शब्दों में कहें तो "चलती रेलगाड़ी में बैठकर आप निरपेक्ष कैसे रह सकते हैं।"

(सिडनी शांति पुरस्कार ग्रहण करते समय दिए गए भाषण का अविकल रूपांतरण)

अनुवादक : जितेन्द्र कुमार